सीखना उम्र का मोहताज नहीं

रोहिल

हमने सुना, पढ़ा, देखा या अनुभव किया होगा कि पुस्तकालय की छोटी-छोटी कहानियों की किताबें पढ़ना सीखने को किस तरह से आसान बनाती हैं। बशर्ते, पाठक को ढेर सारी किताबों का संग्रह मिल जाए। किताबों के संग्रह से वह अपनी पसन्द की कहानियों की किताबों को चुनकर पढ़ पाए। पाठक पर किसी भी तरह की कोई बन्दिश न हो। जब चाहे, जैसे चाहे उनसे मुखातिब हो सके। जब वे इस प्रकिया से गुज़र रहे हों, तब समय-समय पर व ज़रूरत पड़ने पर मदद करने वाले साथ में मौजूद हों।

मैं लगभग 26-27 वर्ष की एक स्त्री के पढ़ना सीखने के शैक्षणिक सफर के अनुभव को साझा कर रहा हूँ। खास कर, उन तमाम जन के लिए जिनका शिक्षा के क्षेत्र में औपचारिक व अनौपचारिक जुड़ाव रहा है। पर साथ ही उन लोगों के लिए भी जो शिक्षा में नवाचार को तवज्जो देते रहे हैं, और वे भी जिनकी नज़र कभी-कभी यूँ ही किताबों पर चली जाती है।

इस स्त्री के शैक्षणिक सफर के अनुभव को मैंने बहुत करीब से देखा है। जब मैं इस अनुभव से गुज़र रहा था, तब किताबों में पढ़ी हुई या किसी शिक्षाशास्त्री के वक्तव्य भर में सुनी हुई 'सीखने' से जुड़ी बातें मुझे मेरी नज़रों के सामने होते हुए दिख रही थीं। यह मैंने किसी शासकीय शाला या मोहल्ला सेंटर में नहीं देखा, बल्कि अपनी पत्नी के साथ घटते हुए अनुभव किया।

रुकसाना की दुनिया

मेरी पत्नी, रुकसाना, कभी किसी मदरसे या स्कूल नहीं गई थी। उसका दूर-दूर तक शिक्षा से कोई लेना-देना नहीं था। एक उम्र के बाद, उसने यह ख्वाब भर तक देखना छोड़ दिया था कि वह इस तरह से ढेर सारी कहानियों की किताबों से रू-ब-रू हो पाएगी। रुकसाना का नाता एक रूढ़िवादी सोच के परिवार से रहा है, जहाँ यह समझा जाता रहा है कि 'लड़कियों को पढ़ा-लिखाकर क्या करना है। धार्मिक शिक्षा मिल जाए वही बहुत है, उनको कौन-सा नौकरी करना है। धार्मिक शिक्षा ही अन्त में काम आती है। दुनिया की तालीम तो यहीं रह जाएगी। दीनी तालीम ही आखिरत में काम आएगी'। ऐसी विचारधाराओं से रुकसाना का जीवन घिरा रहा।

परिवार में पाँच बहनों में कोई भी स्कूली शिक्षा नहीं ले पाई। केवल लड़कों को अपनी मर्ज़ी से कुछ भी करने की आज़ादी थी। मैं और मेरा परिवार भी पहले इस मानसिकता के शिकार रहे हैं लेकिन जैसे-जैसे स्कूली शिक्षा मिलनी शुरू हुई, समाज की रूढ़िवादी सोच से उभरने का अवसर मिलता चला गया।

मैं ठहरा एक स्नातकोत्तर नौजवान लड़का और वह ईंट के भट्ठों पर काम करने वाली एक नौजवान लड़की। हम दोनों के बीच शादी की रज़ामन्दी कुछ इस बुनियाद पर तय हुई कि अगर हम एक-दूसरे को अपने जीवन-साथी के रूप में देख रहे हैं तो उनको मेरे साथ रहकर पढ़ने-लिखने की ज़हमत उठानी पड़ेगी। इस ज़हमत के लिए, मैं उनकी हर सम्भव मदद करूँगा।

यह शर्त इसलिए थी क्योंकि मेरा मानना है कि पढ़ने-लिखने से हम केवल कहानियों, किस्सों, कविताओं एवं व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों तक ही सिमटकर नहीं रहते; बल्कि इससे हम समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक ताने-बाने को समझने, उन पर विचार करने एवं उन्हें आत्मसात करने के मौके भी पाते हैं। असल में, हम पढ़ने-लिखने के दौरान अपनी सोच के दायरे को फैला रहे होते हैं। हम सोचने के अलग-अलग दृष्टिकोणों को आत्मसात कर रहे होते हैं। हम पुरानी संस्कृति से नई संस्कृति में हो रहे बदलावों को भी देख पाते हैं। पढ़ने-लिखने से जो ज्ञान हम खुद ग्रहण कर रहे होते हैं, उसको दूसरी पीढ़ी को सौंपने का काम भी कर सकते हैं। जब हम अलग-अलग तरह के साहित्य से अवगत होते हैं तो स्वाभाविक रूप से हम उसको सकारात्मक व नकारात्मक, दोनों पहलुओं से देख पाते हैं, जिससे हमारे सोचने के आयाम ही बदल जाते हैं।

पढ़ने की शुरुआत

हमारी शादी होने में लगभग एक-दो महीने ही बचे थे कि रुकसाना ने पड़ोस की किसी सहेली के यहाँ कभी-कभी पढ़ने के लिए जाना शुरू कर दिया। वह वहाँ हिन्दी की बारहखड़ी सीखने का प्रयास करने लगी। बीच-बीच में मैं भी उससे पूछता रहता कि क्या चल रहा है। वह जो भी सीखती, मुझे बताती कि आज यह सीखा, वह सीखा।

फिर कुछ यूँ हुआ कि जब हम दोनों शादी के बाद होशंगाबाद ज़िले के पिपरिया ब्लॉक में आए तो मैंने पहले दिन यह जानने-समझने की कोशिश की कि रुकसाना का भाषा में क्या स्तर है। मैंने पाया कि उसे हिन्दी की ज़्यादातर वर्णमाला का ज्ञान है। वह कुछ-कुछ शब्द भी पढ़ पाती थी जैसे - कप, आम, नाक, कलम। पढ़ने का यह स्तर देखने के बाद मैंने उसे *एकलव्य* संस्था की 'पढ़ो-लिखो मज़ा

करो' पुस्तिका का अभ्यास करवाया, जिसमें उसने पहले छोटे-छोटे शब्दों को पढ़ने का और उसी के साथ मात्रात्मक सरल शब्दों का अभ्यास किया। कच्चा-पक्का मात्रात्मक ज्ञान होने के बाद, मैंने उसे *एकलव्य* की लायब्रेरी से छोटे-छोटे वाक्यों वाली किताबें पढ़ने के लिए दीं। उसे अपने शुरुआती दौर में बरखा सीरीज़ की किताबें पढ़ने में बहुत मज़ा आता था। पर उसके अलावा उसने एन.बी.टी. और *एकलव्य* की किताबें भी बड़े चाव से पढ़ीं।

जब वह उन किताबों को पढ़ रही होती तो मुझसे वे शब्द पूछने आती जो उसके लिए नए होते थे या जो वह पढ़ नहीं पाती थी। रुकसाना को शक होता था कि कहीं वह उस शब्द को गलत तो नहीं पढ़ रही है। जिन शब्दों में 'अं' की बिन्दी लगी होती थी या जिनमें मात्रा वर्ण से पहले लगी होती थी, ऐसे शब्दों को पढ़ने में काफी जद्दोजहद करनी पड़ती थी। उदाहरण के लिए, यदि कहीं 'रंक' या 'बन्दर' लिखा होता, तो उसे शब्द का उच्चारण करने में परेशानी का सामना करना पड़ता था। 'निश्चित' या 'पुस्तिका' जैसे शब्दों में 'इ' की मात्रा का उच्चारण किस वर्ण के साथ करना है, यह मालूम न हाने से परेशानी होती थी। इस तरह के शब्दों पर मैंने भी इससे पहले उसके साथ काम नहीं किया था। जब वह कहानी पढ़ रही होती थी तो सरल शब्दों के साथ ही उसे नए शब्दों की बनावट से भी रू-ब-रू होना होता था। उदाहरण के लिए मृग, प्रश्न, गर्म, ग्राम, धर्म, कर्म, क्रम – इस तरह के ढेर सारे शब्द उसको कहानियों में देखने को मिलते थे, लेकिन इन शब्दों की पुनरावृत्ति किताब में कम होती थी।

रुकसाना बनाम बच्चे

स्कूली बच्चों की तरह रुकसाना में भी यह खास बात थी कि किसी भी नए अथवा कठिन शब्द से सामना होने पर झट-से उसके बारे में पूछे बिना आगे नहीं बढ़ती थी। अगर मैं उसके पास मौजूद नहीं होता था तो उस शब्द को बाद में ज़रूर पूछती थी कि इसको कैसे पढ़ा जाता है। इस तरह से उसको कहानियों की किताबों से ऐसे शब्दों का अभ्यास लगातार होता गया, और वह एक के बाद एक किताबें पढ़ती गई।

अगर मैं रुकसाना और बच्चों के पढ़ने सीखने में हो रही गलतियों पर समानताओं व असमानताओं की बात करूँ तो मैं उसके पढ़ने के दौरान देख पाया कि जिस तरह प्राथमिक स्कूल के बच्चे नए-नए शब्दों को लेकर जूझते हैं, उन्हें समझने या पढ़ने के लिए किसी दूसरे की मदद लेते हैं, ऐसा उसके साथ भी देखने को मिला। लेकिन उम्र का फासला ज़्यादा होने के कारण बच्चों की अपेक्षा रुकसाना द्वारा चीज़ों को जल्दी समझ लेना भी, देखने को मिला। साथ ही, वह खुद से भी अन्दाज़ा ज़रूर लगाती रहती थी कि शायद फलाँ शब्द को ऐसे पढ़ा जा सकता है, और फिर अपने अन्दाज़े को पुख्ता करने के लिए बाद में अपने सहपाठी से पूछकर पक्का करना भी रुकसाना की प्रवृत्ति में शामिल रहा है। बीच-बीच में पढ़ते-पढ़ते ऊब जाना, फिर मन करे तो पढ़ते रहना, अपनी पसन्द से अच्छी-से-अच्छी किताब का चुनाव करना, ज़्यादा टोका-टाकी पसन्द न करना, प्रोत्साहन करने पर लगन से पढ़ना और अपनी पढ़ी हुई कहानी के अच्छे व खराब हिस्से को बताना, लिखते समय शब्द की बनावट जब तक उसके हिसाब से ठीक नहीं बन जाती तब तक मिटाना और बार-बार लिखना - ये सब भी रुकसाना की प्रवृत्ति का हिस्सा रहे हैं।

इस दौरान एक बात यह समझ आई कि अगर यह सब उसके साथ बचपन में किया जाता तो शायद वह इतनी जल्दी नहीं सीख पाती जितना इस उम्र में सम्भव हो पाया है। इस बात से यह भी सवाल उठता है कि हम या कोई भी पालक चाहता है कि उसका बच्चा जल्दी-से-जल्दी पढ़ना-लिखना सीख ले, लेकिन अगर बच्चे को आप 6-7 साल की उम्र तक कुछ भी पढ़ना-लिखना नहीं सिखाओ तो क्या वह ये सब उस गति से ही सीखेगा या फिर उसके सीखने-समझने की गति में कोई बदलाव आ सकता है? मुझे लगता है, अगर बच्चे को पढ़ने-सीखने में लगन पैदा हो गई है तो उसकी गति एक वयस्क की तरह ही देखी जा सकती है।

उच्चारण की मुश्किलें

जब रुकसाना कहानियों की किताबें पढ़ रही थी तो मैंने पाया कि

वह 'कारण' का उच्चारण 'कारन' करती थी। मैंने कई बार उच्चारण ठीक करवाने की कोशिश की लेकिन वह सही उच्चारण नहीं कर पाती थी। इसका मुख्य कारण मुझे यह समझ आया कि बच्चों की अपेक्षा वयस्कों में एक उम्र के बाद उच्चारण पर काम करना बहुत कठिन प्रक्रिया होती है, क्योंकि कई बार मैं भी अपने आपको कुछ शब्दों के उच्चारण के साथ जूझता पाता हूँ, जैसे – स्तर, सत्र, कर्म, क्रम, मित्र, श्रद्धा। ऐसे शब्दों पर मेरे शिक्षक ने बचपन में ही गौर किया होता तो शायद मैं भी ठीक-से उच्चारण कर पाता। अगर बच्चे और शिक्षक एक ही परिवेश से हैं तो यह समस्या ज़्यादा देखने को मिलती है। मैंने खुद अपने शिक्षक और मेरे साथ पढ़ने वाले विद्यार्थियों में देखा है कि वे भी एक ही तरह का उच्चारण करते मिलते हैं। एक उम्र के बाद उच्चारण पर काम करना उतना आसान नहीं होता है जितना बच्चे के शुरुआती दौर में काम करने का प्रभाव रहता है।

पढ़ने की लगन

एक दिन का वाकया मुझे ठीक-से याद है – रुकसाना को छोटी-छोटी किताबें पढ़ते हुए लगभग महीना भर ही हुआ था कि एक दिन उसने थोड़ी मोटी या यूँ कह लीजिए कि ज़्यादा पन्नों वाली किताब को पढ़ने के लिए चुन लिया। उसने उसे पढ़ना शुरू तो किया लेकिन वह किताब उससे खत्म नहीं हो रही थी। तो उसने थक-हार कर उसको वापस रख दिया। लेकिन मैंने उसे टोका नहीं। उसको उसके मन की करने दी। शाम को उसने उसी किताब के बारे में बताया कि आज तो मैंने गलती से बड़ी किताब पढ़ने के लिए चुन ली थी, जिसे मैंने थोड़ी देर पढ़कर वापस रख दी। लेकिन हैरानी की बात यह है कि उसने यह ठान लिया था कि इस किताब को वह फिर से पढ़ेगी। कुछ दिन बीत जाने के बाद, जब उसे एहसास हुआ कि अब वह इस किताब को एक दिन में पूरा पढ़ सकती है, तो उसने फिर से वह किताब उठाई और उसे पूरा पढ़कर ही दम लिया।

यह वाकया अन्य स्कूली बच्चों के जैसा ही है जो नई किताबों के दौरान अपने को कभी बहुत ज़्यादा खुश तो कभी नाराज़ पाते हैं। अपनी पढ़ी हुई हर कहानी को अपने शिक्षक/शिक्षिका, दोस्त, भाई, बहन या अपने माता-पिता के साथ साझा करने के लिए उतावले रहते हैं। हर रोज़ वह जो किताब पढ़ती, उसे अपने शब्दों में मुझे बताती कि कहानी में क्या-क्या हुआ था, किसने क्या किया।

जब भी हम दोनों बाहर जाते तो मैं दीवारों पर लिखे शब्दों को पढ़ने के लिए अक्सर उसे प्रोत्साहित करता था। हमेशा आसान शब्दों से कठिन शब्दों की तरफ जाने की कोशिश रहती थी। हम बात करते थे कि यही

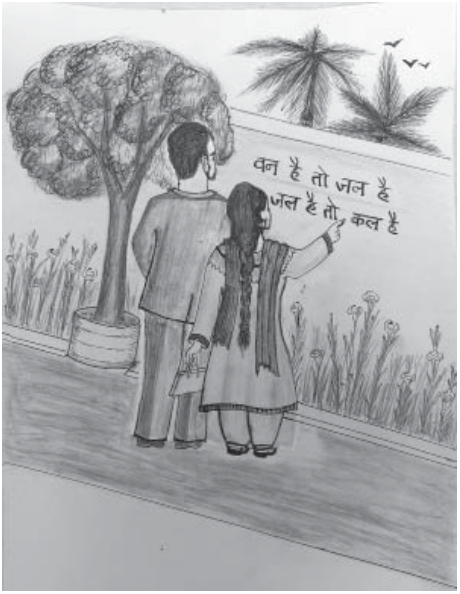

तो पढ़ना है, कहीं भी कुछ लिखे हुए को पढ़कर समझ जाना कि यह क्या कहना चाहता है। किताबों के पढ़े हुए को हमें अपने रोज़मर्रा के कामों से भी जोड़कर देखना है।

लिखना भी ज़रूरी

मुझे इस बात का भी एहसास हुआ कि उसको पढ़ना तो ठीक-से आ गया लेकिन खुद से लिखने में निपुणता उस गति से नहीं आई जिस गति से किताबें पढ़ना आया था। इसका मुझे एक ही कारण समझ आया कि अगर दोनों हिस्सों पर, पढ़ना और लिखने पर, बराबर समय दिया जाता तो रुकसाना का लिखने वाला हिस्सा भी उतना ही मज़बूत किया जा सकता था। साथ ही, यह भी कि पढ़ने वाले की जिज्ञासा और लगन भी पढ़ना सीखने में काफी हद तक मददगार रहती हैं। आसपास रहने वालों द्वारा बढ़ाया गया मनोबल भी उसे ज़्यादा-से-ज़्यादा पढ़ने व सीखने की तरफ लेकर जाता है।

ढेर सारी कहानियों की किताबों से रू-ब-रू होने के बाद अब उसका रुझान लिखने की तरफ देखने को मिलता है। पहले तो जब उसे सोचकर लिखने को कहा जाता था तो लिख ही नहीं पाती थी। कभी-कभी मैं उसे अपने दिनभर के काम लिखने के लिए कहता था तो वह गलतियों के साथ कुछ ही वाक्य लिख पाती थी। शुरुआत में सोचकर लिखने से डरती थी। और कहती थी, "क्या लिखूँ?" लेकिन जब उसी विषय के बारे में कुछ पूछता तो फटाक-से बता देती थी। इस तरह से सोचकर लिखने की तरफ भी शुरुआत हो गई है। गणित में उम्र के हिसाब से मौखिक समझ काफी थी। जोड़ना, घटाना, बाँटना, संख्याओं का हिसाब लगाना – यह सब उसे आता है।

और राहें खुल पड़ीं

जब रुकसाना मेरे साथ इस प्रक्रिया से गुज़र रही थी, उस समय

मेरे साथ काम करने वाले साथियों द्वारा दिए गए मनोबल ने उसे जल्दी-से-जल्दी सीखने-पढ़ने की तरफ अग्रसर किया। उसे कभी-कभी कह देते, "यकीन नहीं हो रहा कि आपने इतनी जल्दी पढ़ना सीख लिया है। हम आपकी लगन की दाद देते हैं। आप वाकई बहुत मेहनत कर रही हैं।" इससे भी उसका मनोबल बढ़ता था। इस अनुभव के दौरान मैंने रुकसाना को पढ़ने-लिखने में खूब गलती करने का मौका दिया। उसे बार-बार कहता था कि जितनी ज़्यादा गलती करोगी, उतना ही तुम्हारे लिए फायदेमन्द रहेगा। मैंने खुद गलती करके सीखा है।

कहानियों की ढेर सारी किताबों से रू-ब-रू हो जाने के बाद आज उसकी स्थिति मैं देख पाता हूँ कि वह कक्षा पाँचवीं की कहानियों, कविताओं को समझकर उनके सवालों के जवाब मौखिक रूप से तो देती ही है, साथ ही, लिखने का भी प्रयास करती है। मुझे ऐसा लगता है कि अगर दो-चार महीने उसकी ठीक-से मदद कर दी जाए तो वह पाँचवीं का पाठ्यक्रम पूरा कर सकती है।

रोहिल: हरियाणा ज्ञान विज्ञान समिति के वैकल्पिक स्कूल 'जीवनशाला' में छात्र जीवन की शुरुआत। संस्था के साथ विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों जैसे विचार गोष्ठियाँ, नुक्कड़ नाटक, सेमिनार, चलता-फिरता पुस्तकालय जैसी गतिविधियों में हिस्सेदारी। सन् 2016 से 2018 तक राजकीय प्राथमिक शालाओं में Hindi Language Teaching Program (HLTP) में कार्य। अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बैंगलुरु से शिक्षा में स्नातकोत्तर। वर्तमान में पिपरिया, *एकलव्य* में कार्यरत।

सभी चित्र: कीर्ति चौहान: बीएड व पीजीडीसीए करने के अलावा अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर। स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं। भोपाल में रहती हैं।